धर्म प्रचार
(आध्यात्मिक पक्ष)
भाग – ८

फूल का पौधा प्रकृति द्वारा, **'अन्तर्गत लिखे हुकुम'** (प्राकितिक नियम) के अनुसार बढता और प्रफुल्लित होता है। फूल निकलने से पहले छोटी सी **'कली'** लगती है। वह खिलकर जब पूरे यौवन पर आती है, तो उसकी **पंखुडिया खुल जाती हैं** और फूल पूर्ण रूप से **खिल जाता है।** उस फूल में से –

महक (fragrance)
कोमलता (delicacy)
सौन्दर्य (beauty)
यौवन (youthfulness)
ताजगी (freshness)
नूर (bloom)
जीवन रौं (life current)
रस (juice)
रंग (colour)

द्वारा प्रभु के –

सति सुहाण
बलिहारी कुदरति वसिआ
हुकुम

की सम्पूर्णता का प्रदर्शन होता है।

फूल के इस उदाहरण से कुदरत के निम्नलिखित नियमों का ज्ञान होता है–

१. पौधे के उगने से, फूल के खिलने तक, जीवन की सम्पूर्ण क्रिया का समय तथा नियम नियत है।

२. इसके **'अन्तर्गत लिखे हुकुम'** के अनुसार, इसे **'माँ' रूपी धरती से** निरन्तर **'जीवन–रौं'** मिलती रहती है तथा एकसार उसकी रग–रग में ओत–प्रोत प्रवृत्त है। परन्तु जब हम अहम् की ढिठाई द्वारा, इसकी 'जीवन रवानगी' में **दखल देते हैं,** तब इसकी प्रफुल्लता तथा सम्पूर्णता के प्रकटाव में विघ्न **डाल देते** हैं। दूसरे शब्दों में, यदि **कली को खिलने से पहले ही तोड़ लिया जाए,** तो फूल की समस्त सुगन्धि आदि अनेक गुणों से वंचित रह जाते हैं।

३. इस प्रकार कुदरत की **'रवानगी'** या हुकुम में **विघ्न डालना इलाही हुकुम में 'हस्तक्षेप' करना है, 'कहर'** है, **'पाप' है,** जो कि हम **जान बूझ कर या अनजाने ही** करते रहते हैं।

यह उदाहरण इन्सानों पर यूँ घटित होता है–

इन्सान के **आत्मिक–जीवन** के विकास, प्रफुल्लता तथा प्रकटाव के लिए भी **समय की आवश्यकता होती है।** यह **समय** निश्चित नहीं, क्योंकि यह सारी आत्मिक जिज्ञासा सतिगुरू की बख्शिश, **नदरि–करम** (grace) **का खेल है।**

जिन कउ नदरि करमु तिन कार ।। (पृ. ८)

"मनु बसि आवै नानका जे पूरन किरपा होइ।।" (पृ. २९८)

जोरु न सुरती गिआनि बीचारि ।। (पृ. ७)

हम **कुछ समय के लिए** पाठ–पूजा, धार्मिक कर्म–क्रिया की साधना करके उच्च–उत्तम, अन्तर–आत्मिक, इलाही नतीजों के लिए उतावले हो कर **जल्दबाजी में** पड़ जाते हैं; तथा निराश होकर 'हताश' (frustrated) हो जाते हैं।

आत्मिक मार्ग में बे–सबरी, जल्दबाजी तथा अहम् के प्रकटाव का, कोई स्थान

नहीं है। इलाही मार्ग में तो अत्यन्त **'सबर-सबूरी'** की आवश्यकता है-

"जतु पाहारा धीरजु सुनिआरु।।" (पृ. ८)

दरवेसां नो लोड़ीऐ रुखां दी जीरांदि।। (पृ. १३८१)

सिदकु सबूरी सादिका सबरु तोसा मलाइकां ।।
दीदारु पूरे पाइसा थाउ नाही खाइका।। (पृ. ८३)

गुरबाणी आत्मिक जिज्ञासु को, नीचे लिखी **भावना से अरदास करना** सिखलाती है-

गिआनु धिआनु किछु करमु न जाना नाहिन निरमल करणी ।।
साधसंगति कै अंचलि लावहु बिखम नदी जाइ तरणी ।। (पृ. ७०२)

नामकु गरीबु ढहि पइआ दुआरै हरि मेलि लैहु वडिआई।। (पृ. ७५७)

हारि परिओ सुआमी कै दुआरै दीजै बुधि बिबेका ।। (पृ. ६४१)

हा हा प्रभ राखि लेहु ।।
हम ते किछु न होइ मेरे स्वामी करि किरपा अपुना नामु देहु ।। (पृ. ६७५)

असा जोरु नाही जे किछु करि हम साकह जिउ भावै तिवै बखसि।। (पृ. ७३६)

पानी के नल में, जब कोई विघ्न या **'रुकावट'** पड़ जाए, तो उसमें पानी का **'बहाव'** (flow) **रुक जाता है** या कम हो जाता है तथा हम पानी के सुख से **वंचित हो जाते हैं।**

इसी प्रकार हजूरी-सिमरन में विघ्न पड़ने से, अंतर-आत्मा में इलाही मंडल के स्त्रोत में से, मन या **हृदय में,** इलाही **'जीवन-रौं'**, 'शबद', 'नाम' के **प्रवाह** (Divine flow of grace) **में रुकावट पड़ जाती है,** हम आत्मिक मंडल की सब बख्शिशों और **बरकतों से वंचित हो जाते हैं** तथा त्रिगुणी मायिकी मंडल के **भ्रम-भुलाव** में दुखी होते हैं।

हमारा मानसिक तथा आत्मिक जीवन, हमारे ख्यालों, धारणाओं तथा **श्रद्धा भावना पर निर्भर है।** परन्तु हम अपने अहम् के **भ्रम-भुलाव** में, अपनी **आत्मिक विरासत- 'शबद', 'नाम', 'गुरप्रसादि' से** अनजान, अनभिज्ञ, बे-खबर,

बे–परवाह, लापरवाह, बेसुरे, भटके हुए, लक्ष्य–हीन तथा श्रद्धा–हीन हो गये हैं तथा **‘प्रभु की उपस्थिति’** (Divine presence) या हजूरी के **इलाही ‘स्नेह’** तथा उसके **‘गुरप्रसादि’** से **वंचित रहते हैं** तथा मायिकी मंडल के अंधकार में **‘पांचों’ के वश** में आ जाते हैं।

यह **‘विघ्न’** या रुकावट, कोई बाहरमुखी दृश्यमान **‘ठोस’ वस्तु या कर्म‘क्रिया नहीं,** बल्कि हमारे हृदय में आत्मिक निश्चय या **श्रद्धा–भावना की ‘कमी’ या ‘अभाव’ ही है।**

दूसरे शब्दों में हमारे **मिथ्या अहम् के भ्रम–भुलाव का अंधकार ही यह रुकावट है। यह भ्रम का ‘अंधकार’** प्रभु प्रकाश की **गैर–हाजिरी का ही नाम है। जहाँ प्रकाश है,** वहाँ **अंधकार का अस्तित्व हो ही नहीं सकता।**

ज्यों ज्यों, माया के भ्रम–भुलाव की अज्ञानता के कारण, हमारे मन में **प्रभु की ‘उपस्थिति’** तथा उसके ‘हुकुम’ ‘शबद’, ‘नाम’ के विषय में–

शक उत्पन्न होता है
निश्चय डगमगाता है
श्रद्धा–भावना कम होती है
प्रभु को **भूलते हैं**

ज्यों ज्यों, हमारे हृदय में ‘गुरप्रसादि’ के इलाही **‘जीवन–रौं’** का वेग या प्रवाह (flow of Divine grace) **कम होता जाता है** तथा हम इलाही गुणों और बरकतों से **वंचित होते जाते हैं।** इस प्रकार **‘ईश्वरीय–अस्तित्व’** से हम बे–सुर, बिमुख, बे–परवाह, ढीठ, नास्तिक, हठीले, अज्ञानी तथा मनमुख होकर, ‘पलचि पलचि सगली मुई झूठै धंधै मोहु’ वाला दुखी मायिकी जीवन व्यतीत करते हैं।

यदि हमारी थोड़ी सी, **दिखावे मात्र ‘श्रद्धा’** होती भी है, तो वह भी **‘पांचों’** के भांति–भांति के हेर फेर, मनमोहक चमत्कारों या ‘भयानक रूप’ की भयंकर धमकियों, चिंता, फिकर, ईर्ष्या–द्वेष, क्रोध, वैर–विरोध, नफरत, झगड़ों आदि से, फौरन **‘तितर–बितर’** होकर **‘लुप्त’ हो जाती है।**

उदाहरण के तौर पर जब कोई मुसीबत आ पड़े, तो एक और तो हम ‘अखंड पाठ’ की मन्नत मानकर **अरदास करवाते हैं** तथा दूसरी ओर दुनियाई अफसरों की ‘सिफारिश’ लगवाते हैं, तीसरी और **‘रिश्वत’ का हथकन्डा भी अपनाते हैं।**

यहीं बस नहीं, धार्मिक दैवीय निश्चयों को **खूंटे पर टांग कर** अपनी चतुराई तथा सयानप द्वारा, **ज़ायज–नाज़ायज उक्तियों–युक्तियों द्वारा योजनाएं बनाते हैं।**

हमारी मानसिक गिरावट (moral degeneration) तो यहां तक बढ़ गयी है **कि छोटी सी व्यर्थ बात के लिये भी झूठ बोलना तथा कूड़ कमाना** हमारा **स्वभाव ही बन गया है। यह मानसिक ग्लानि** हमारे अंतःकरण में इतनी **धँस, बस, रस** गई है कि जीवन का **'अंग' ही बन गई है।**

हास्यप्रद बात तो यह है कि हम इस **'कूड़' (मिथ्या) को ही उचित तथा 'सत्य' मानते हैं।** इस **मिथ्या 'खेल–अखाड़े'** में, एक दूसरे से आगे बढ़ने के लिए (competition in corruption) ही **सारा ज़ोर लगा रहे हैं** तथा इस मिथ्या 'कामयाबी' में भले भद्र पुरुष बनकर **फूले नहीं समा रहे।**

गुरबाणी में हमारी इस दुर्दशा का नक्शा यूं खींचा गया है–

कूड़ राजा कूड़ परजा कूड़ सभु संसारु।।..............
कूड़ि कूड़ै नेहु लगा विसरिआ करतारु।। (पृ. ४६८)

पड़हि मनमुख परु विधि नहीं जाना ।।
नामु न बूझहि भरमि भुलाना ।।
लै कै वढी देनि उगाही दुरमति का गलि फाहा हे।। (पृ १०३२)

साकती पाप करि कै बिखिआ धनु संचिआ
तिना इक विख नालि न जाई ।। (पृ. ७३४)

इस **'मिथ्या प्रपंच'** के अन्दर **जबरदस्त 'अनैतिक मुकाबले'** (immoral competition) मे हमने **सिर–तोड़ दौड़ लगाई हुई है।**

We are caught in the vicious competition towards bottomless quagmire of Maya.

खेद की बात तो यह है कि प्रभु द्वारा रचित **शिरोमणी मनुष्य 'योनि',** अहम् के **दीर्घ–रोग से,** मानसिक ग्लानि से इतनी **'भ्रष्ट' हो चुकी है** कि **अच्छे–बुरे, नेक–बद, झूठ–सच** को **पहचानने** या **महसूस करने से भी 'असमर्थ'**

(obstinate) हो गई है।

The tragedy of humanity is that, the exalted Human being, created by God in His own image, has degenerated to such a low-degree, that he has lost the sense of discrimination of right and wrong, truth and false-hood, virtue and vice and has become indifferent or stuborn to the higher inspiration of morality or Religion. In fact humanity is suffering from the crisis of faith in Moral, Religious and Spiritual Values of Life.

हमारी मानसिक ग्लानि का कारण यह है कि अहम् स उत्पन्न **'मैं–मेरी'** (selfishness) का **आधार** त्रिगुणी मायकी **भ्रम–भुलाव** पर **निर्भर** है, जो बुद्धि के दायरे तक **सीमित** है।

यह दिमागी **'निश्चय'** भी, हमारी अच्छी बुरी संगत तथा वातावरण अनुसार **बदलते** रहते हैं। इसलिए हमारी धारणाओं या श्रद्धा भावना की कोई दृढ़, अटल, सच्ची पवित्र **बुनियाद नहीं है।**

Our so called beliefs and faiths are based on flimsy dogmatic mental ideas and hypothesis, which change from time to time according to outer circumstances, and have no roots in True Eternal Changeless Foundation of Divinity.

'अकाल पुरुष' तथा उसके **'गुर प्रसादि' का 'विश्वास'** ही हमारे निश्चय, भरोसे तथा श्रद्धा–भावना की **सच्ची–पवित्र, अटल 'बुनियाद' है।**

इसके बिना, अन्य मायिकी, **दिमागी 'निश्चय'**, सब झूठे, फोकट, बे–बुनियाद तथा **'जड़–हीन'** हैं तथा **बदलते रहते हैं।**

जा कै रिदै बिस्वासु प्रभ आइआ ॥
ततु गिआनु तिसु मनि प्रगटाइआ ॥ (पृ. २८५)

जा कै मनि गुर की परतीति ॥
तिसु जन आवै हरि प्रभु चीति ॥ (पृ. २८३)

जिस प्रकार कोई शहजादा खो जाए या भटक जाये तो अपनी **'शाही विरासत'**

(royal heritage) से अनजान तथा **बे–खबर होकर,** शाही घराने की सब **बरकतों से वंचित रहता है–** उसी प्रकार हम अपनी **'इलाही विरासत'** से अनजान तथा **'भूल'** में है और 'अग्नि शोक सागर' में **गोते खाकर** दुखी हो रहे हैं–

माधवे किआ कहीऐ भ्रमु ऐसा ।।
जैसा मानीऐ होइ न तैसा ।।१।। रहाउ।।
नरपति एकु सिंघासनि सोइआ सुपने भइआ भिखारी ।।
अछत राज बिछुरत दुखु पाइआ सो गति भई हमारी ।। (पृ ६५७–५८)

इस **'भूल' को पुनः 'याद' में बदलने के लिये** तथा आत्मिक **अनुभवी ज्ञान** से अपनी **'इलाही विरासत'** को बूझने, जानने, पहचानने के लिए गुरबाणी में अत्यंत सरल नुक्ते बताये गये हैं–

अवरि काज तेरै कितै न काम ।।
मिलु साधसंगति भजु केवल नाम।। (पृ. १२)

साजन संत करहु इहु कामु ।।
आन तिआगि जपहु हरि नामु ।। (पृ२९०)

सेई पिआरे मेली जिन्हा मिलिआ तेरा नामु चित आवै।। (अरदास)

मन तूं जोति सरूपु है आपणा मूलु पछाणु ।। (पृ४४१)

जह अबिगतु भगतु तह आपि ।।
जह पसरै पासारु संत परतापि ।। (पृ. २९२)

मेरे साजन हरि हरि नामु समालि ।।
साधू संगति मनि वसै पूरन होवै घाल ।। (पृ५२)

जब कभी अत्यन्त दुखी होकर 'जीव', **पूर्ण श्रद्धा भावना से, 'त्राहि–त्राहि' करता हुआ,** गुरू की शरण में गिर पड़ता है तो सतिगुरू तत्काल प्रकट होते हैं तथा अपने 'सद–बख्शिंद' 'सदा मिहरवाना' के **'बिरद' (कर्त्तव्य) का पालन करते हैं।**

जिथै हरि आराधीऐ तिथै हरि मितु सहाई ॥
गुर किरपा ते हरि मनि वसै होरतु विधि लइआ न जाई॥ (पृ.७३३ – ३४)

तूं विसरहि तञ्ञ सभु को लागू चीति आवहि तां सेवा ॥ (पृ. ३८३)

जैसी पिआस होइ मन अंतरि तैसो जलु देवहि परकार ॥ (पृ.५०४)

जो मागउ सोई सोई पावउ अपने खसम भरोसा ॥ (पृ. ६१९)

We are all prodigal sons of God, and have deprived ourselves from Divine Heritage of JOY, BLIS and LOVE, by our own ignorance, disbelief and faithlessness.

The moment we become intuitionally conscious of our Divine Heritage - the flow of Divine Grace will be re-established into our hearts and souls; and we will be blessed with the Eternal JOY, BLISS and LOVE of Divine Grace.

वास्तव में त्रिगुणी **'माया'** की अज्ञानता में, **'जीव'** अपने 'आप' को, दुनिया की रचना को, सृष्टि को, 'प्रभु' को, प्रभु के 'हुकुम' को, प्रभु के गुरप्रसादि' को, प्रभु के प्यार को, प्रभु के आश्चर्यजनक अचम्भों को, प्रभु के 'जलवे' को, प्रभु के 'शबद' को, प्रभु के 'नाम' को, परमार्थ को, धर्म को, समझने, बूझने, चीन्हने, पहचानने से असमर्थ तथा कोरा रहता है। **'अहम'** के भ्रम – भुलाव के **अंधकार में,** आत्मिक मंडल के अनुभवी इलाही धर्म का प्रचार करना, निर्मूल तथा लाभहीन ही नहीं, अपितु **हानिकारक भी हो जाता है।**

गुरू जिना का अंधुला सिख भी अंधे करम करेनि ॥ (पृ. ९५१)

अंधा आगू जे थीऐ किउ पाधरु जाणै॥
आपि मुसै मति होछीऐ किउ राहु पछाणै। (पृ. ७६७)

नानक अंधा होइ कै दसै राहै सभसु मुहाए साथै॥ (पृ. १४०)

यह इलाही 'बख्शिश' तथा 'जलवा' (Divine grace and glory), प्रत्येक जीव की अंतर – आत्मा में, गुप्त रूप में **'रवि रहिआ भरपूरि' है,** परन्तु हम अपने मन की **श्रद्धा – भावना की 'प्रणाली' में 'अहम्', 'मैं – मेरी' की 'श्रद्धा – हीन'**

अज्ञानता, सयानप, चतुराई के **'कंकड़ों–पत्थरों' से अड़चन डाल देते हैं।** जिस कारण हम समस्त इलाही बख्शिशों, **'प्रीत, प्रेम, रस, चाव' आदि गुणों से वंचित जा रहे हैं–**

इहु धनु सरब रहिआ भरपूरि ॥
मनमुख फिरहि सि जाणहि दूरि ॥ (पृ. ९९१)

घरि होदै धनि जगु भूखा मुआ बिनु सतिगुर सोझी न होइ॥ (पृ. १२८९)

'फूल' अपने स्त्रोत– 'धरती' में से, 'अन्तर्गत लिखे हुकुम' अनुसार, 'जीवन–रौं' तथा इलाही गुण प्राप्त करता हुआ, उत्पन्न होता और प्रफुल्लित होता हुआ, यौवन की मस्ती से, जीवन के नूर से, अपनी महक सौन्दर्य, कोमलता, यौवन, प्रेम–आकर्षण से अपना 'आपा' बाँटता, बिखेरता, दान करता, सेवा करता हुआ, अपने इलाही दाता के आश्चर्यजनक गुणों और बख्शिशों का विकास, प्रकाश, प्रकटाव, इश्तिहार, प्रचार करता हुआ सहज ही, अनजाने ही, गुप्त रूप से, अनदेखे ही, स्वतः ही, अहम् रहित आत्म मंडल के इलाही धर्म का प्रचार कर रहा है।

परन्तु हम, 'अहम्' के भ्रम–भुलाव में, इतने **गलतान तथा खो गये हैं** कि कुदरत के **'खेल अखाड़े' के आश्चर्यजनक विस्मादी 'चमत्कारों'** (ecstatic wonders) को समझने, बूझने, चीन्हने, पहचानने से **असमर्थ** हैं तथा इनके **दर्शन से–**

बलिहारी कुदरति वसिआ ॥ (पृ. ४६९)

सति सुहाणु सदा मनि चाउ ॥ (पृ ४)

सभ दुनीआ सुबहानु सचि समाईऐ ॥ (पृ. १४२)

नानक सच दातारु सिनाखतु कुदरती ॥ (पृ .१४१)

बिसमु भए बिसमाद देखि कुदरति तेरीआ ॥ (पृ. ५२१)

सची तेरी सिफति सची सालाह॥
सची तेरी कुदरति सचे पातिसाह ॥ (पृ. ४६३)

वाले **विस्मादी आह्लाद** के रस, रंग, चाव को **अनुभव करने से वंचित** तथा दूर जा रहे हैं। ठीक इसी प्रकार, आत्मिक जीवन वाले, अन्तर–आत्मा में जुड़े हुए,

इन्सानी स्वरूप में इलाही 'पुरुष', गुरमुख प्यारे, 'तत्त जोग के बेते', 'हरि जन', भक्त, साधु, संत, परोपकारी, ब्रह्मज्ञानी, महापुरुष, खालसे संसार में **अलिप्त आत्मिक जीवन** व्यतीत करते हुए, **'परउपकार उमाहा'** की **प्रेरणा** तथा 'हुकुम' में, इलाही गुणों का प्रकाश तथा प्रचार सहज ही, स्वतः ही, अनजाने ही, भोले भाव ही, गुप्त रूप से, अनदेखे ही, चुपचाप, अहम् रहित कर रहे हैं।

इन्हें **'अहम्ग्रस्त'** लोगों की भांति, परोपकार अथवा प्रचार करने का ताप नहीं चढ़ा होता।

यह पूर्ण **आत्मिक अनुभवी सूझ में,** इलाही **'हुकुम' का पालन करते हैं।**

ऐसे ऊँचे, पवित्र, **'जीवन वाले' 'तत जोग के बेते',** गुरमुख प्यारों, गुरसिक्खों, के प्रति ही, गुरबाणी में यूँ प्रशंसा की गई है –

जनु नानकु धूड़ि मंगै तिसु गुरसिख की
जो आपि जपै अवरह नामु जपावै ॥ (पृ. ३०६)

जिन डिठिआ मनु रहसीऐ।।
किउ पाईऐ तिन्ह संगु जीउ।। (पृ. ७६०)

नानक दासु इहै सुखु मागै
मो कउ करि संतन की धूरे।। (पृ. १३)

हमारी पाठय प्रणाली में अध्यापक अपनी **योग्यता अनुसार** ही शिक्षा प्रदान कर सकते हैं। छोटी कक्षाओं में तो ग्रेजुऐट टीचर पढ़ा सकते हैं, परन्तु कालेज की उच्च कक्षाओं को केवल 'पी.एच.डी.' की डिग्री प्राप्त प्रोफैसर ही पढ़ा सकते हैं। 'पी.एच.डी.' की डिग्री प्राप्त करने के लिए किसी खास विषय (Subject) **की गहन आन्तरिक खोज** (research) करनी पड़ती है।

ग्रैजुऐट टीचर के लिए, कालेज के विद्यार्थियों को पढ़ाना अनुचित, लाभहीन तथा हास्यप्रद बात है। 'पी.एच.डी.' डिग्री वाले प्रोफैसर के लिए, स्कूल में पढ़ाना, समय तथा शक्ति को बर्बाद करना (wastage of time and energy) है।

उपरोक्त उदाहरण से निम्न **नुक्ते उभर कर स्पष्ट होते हैं–**

१. अध्यापक बनने के लिए स्वयं **योग्यता** प्राप्त करनी पड़ती है।

२. उच्च कक्षाओं को पढ़ाने के लिए **खोज** (research) करनी पड़ती है।

३. **बिना योग्यता,** पढ़ाना या **प्रचार करना,** अनुचित लाभहीन कार्य है।

४. 'फूल' स्वयं खुशबु से **परिपूर्ण होकर** ही **खुशबू बांट सकता है।**

५. **बाहरमुखी दिमागी ज्ञान 'अलग' है** तथा अन्तरमुखी **अनुभवी ज्ञान, बिल्कुल 'भिन्न' है।**

गोविंद भजन की मति है होरा।।
वरमी मारी सांपु न मरई नामु न सुनई डोरा ।। (पृ. ३८१)

६. 'आपि जपै अवरह नामु जपावै' के इलाही **'उपदेश'** में से हमने **पहली शिक्षा 'आपि जपै'** को –

समझा ही नहीं
बूझा ही नहीं
अभ्यास ही नहीं किया ।

७. इसलिए दूसरी शिक्षा, **'अवरह नामु जपावै' की कमाई नहीं की जा सकती ।**

प्रथमे मनु परबोधै अपना पाछै अवर रीझावै।।
राम नाम जपु हिरदै जापै मुख ते सगल सुनावै ।। (पृ. ३८१)

हम थोड़ी बहुत धार्मिक पुस्तकें पढ़ सुन कर **नाममात्र दिमागी** ज्ञानसीखकर, इलाही **अनुभवी मंडल से अवतरित गुरबाणी का प्रचार करते हैं।** इस दिमागी धार्मिक प्रचार का **प्रभाव, मायिकी मंडल के जिज्ञासुओं की बुद्धि तक ही सीमित होता है** तथा त्रिगुणी माया के **भ्रम–भुलाव के अन्धकार में से निकालने में 'असमर्थ' हैं।** यह दिमागी ज्ञान, हमें आत्मिक मंडल की प्रकाश रूपी 'झलक' नहीं दिखा सकता। इसलिए, मात्र मानसिक दिमागी ज्ञान, आत्मिक मंडल के उत्तम जिज्ञासु के लिए पर्याप्त नहीं।

गुरबाणी में, आत्मिक मंडल का निर्मल इलाही **'तत्त ज्ञान', 'आत्म प्रकाश', 'नाम रंग परिपूर्ण' है।** इसे केवल अंतर आत्मा में, आत्मिक मंडल की अनुभवी 'खोज' से ही बूझा, सीझा, पहचाना, चिन्हा जा सकता है। यह आत्मिक तत्-ज्ञान, **दिमागी समझ तथा बुद्धि की पकड़ से बाहर है।** इसलिये **इलाही मंडल की 'अनुभवी सूझ', बाहरमुखी दिमागी ज्ञान से हो ही नहीं सकती।**

गुरबाणी में इन भ्रांतियों का वर्णन इस प्रकार किया गया है–

अवर उपदेसै आपि न करै।।
आवत जावत जनमै मरै ।। (पृ. २६९)

उपदेसु करै आपि न कमावै ततु सबदु न पछानै।। (पृ. ३८०)

पड़ि पंडितु अवरा समझाए ।।
घर जलते की खबरि न पाए ।। (पृ. १०४३)

पंडितु पड़ि पड़ि उचा कूकदा माइआ मोहि पिआरु ।।
अंतरि ब्रहमु न चीनई मनि मूरखु गावारु ।। (पृ. ८६)

जिस प्रकार –

१. टूटी हुई 'कली' में से, फूल के अनेक गुण, खुशबू आदि, पूर्ण रूप में नहीं मिल सकते।

२. खोज के उपरान्त, पी.एच.डी. की डिग्री प्राप्त किये बिना, प्रोफैसर (professor) अपने विषय को भली प्रकार नहीं पढा सकता।

३. कच्ची सरसों को पीसकर, न 'खल' बनती है न 'तेल'।

४. उपयुक्त विधि से, दूध को जामुन न लगाया जाए तो उससे न मक्खन निकलेगा और न ही लस्सी बनेगी।

इसी प्रकार गुरबाणी को अन्तर–आत्मा में बूझकर, सीझकर तथा अनुभव किये बिना, गुरबाणी के अन्तरीव भावों के गहन भेदों का, दिमागी प्रचार करने से कोई खास लाभदायक प्रभाव नहीं हो सकता। इसी कारणवश इतना ज्यादा दिमागी धर्म प्रचार होने के बावजूद हम गुरबाणी के – गहरे अर्थ, आन्तरिक भावना,

अनुभवी ज्ञान, गुप्त भेद, आत्म – प्रकाश, आत्म रुन – झुन, महारस, चाव, सुख, नूर, नाम से वंचित हैं।

इसी कारण वश हमारे मानसिक तथा धार्मिक जीवन में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आ रहा । बाहरमुखी धार्मिक कर्म – क्रिया करते हुए भी, हम रूखा सूखा, फोकट, 'ढहदीयां कला' (पतन) का जीवन व्यतीत कर रहे हैं । जीवन क्षेत्र के हर पहलू में, 'पंच जनों' के टकराव में, 'हारकर', चित हो जाते हैं तथा अत्यन्त निराशता (frustration) में प्रभु से भी श्रद्धाहीन और विमुख हो जाते हैं ।

जिस प्रकार 'पी.एच.डी.' की डिग्री के लिए, किसी विषय पर गहन खोज करनी पड़ती है, उसी प्रकार, आत्मिक जिज्ञासु को गुरमुख प्रचारक बनने के लिए, साध संगति में शबद सुरति द्वारा, अटूट सिमरन अभ्यास करके, अपने भीतर 'आत्मिक – स्त्रोत' की गहराइयों में, गुरबाणी के अन्तरीव भाव या तत्त को – खोजने, बूझने, चीन्हने, सीझने, अनुभव करने की आवश्यकता है।

गुरमति खोजि लहहु घरु अपना बहुड़ि न गरभ मझारा है।। (पृ. १०३०)

जन नानक बिनु आपा चीनै मिटै न भ्रम की काई।। (पृ. ६८४)

सभ किछु घर महि बाहरि नाही।।
बाहरि टोलै सो भरमि भुलाही ।। (पृ. १०२)

मन मेरिआ अंतरि तेरै निधानु है बाहरि वसतु न भालि ।। (पृ. ५६९)

जब उत्तम जिज्ञासु की, 'अंतर आत्मिक खोज', 'साध संगति' तथा गुरू की कृपा से, सम्पूर्ण होती है तो –

बाहरि ढूढन ते छूटि परे गुरि घर ही माहि दिखाइआ था ।। (पृ. १००२)

आनद मूलु रामु सभु देखिआ गुर सबदी गोविदु गजिआ।। (पृ. १३१५)

नानक का पातिसाहु दिसै जाहरा।। (पृ. ३९७)

वाली अवस्था प्राप्त होती है।

यह ऊंची – पवित्र आत्मिक अवस्था **वाले गुरमुख प्यारे, किसी विस्माद – मयी आह्लाद की मस्ती में,** कह उठते हैं –

सुनहु लोका मै प्रेम रसु पाइआ ।। (पृ. ३७०)

अहिनिसि बनी प्रेम लिव लागी सबदु अनाहद गहिआ ।। (पृ. ३६०)

प्रेम रसा निधि जा कउ उपजी छोडि न कतहु जाता ।। (पृ. ५३२)

खूबु खूबु खूबु खूबु खूबु तेरो नामु।।
झूठु झूठु झूठु झूठु दुनी गुमानु।। (पृ. ११३७)

देखिआ तिहुं लोक का पीउ ।।
अचरजु भइआ जीव ते सीउ ।। (पृ. ३४४)

इस इलाही मंज़िल पर पहुंचकर, बख्शे हुए गुरमुख प्यारे, त्रिगुणी **मायिकी मंडल के भ्रम के अन्धकार से ऊपर उठकर,** आत्मिक मंडल के **निर्मल प्रकाश में उड़ान भरते हैं** तथा **इलाही 'हुकुम' के परायण होकर परोपकारी जीवन व्यतीत करते हुए, 'हुकुम' का पालन करते हैं–**

जिउ तू चलाइहि तिव चलह सुआमी
होरु किआ जाणा गुण तेरे ।। (पृ. ९१९)

जो तूं करावहि सो करी पिआरे अवरु किछु करणु न जाइ।। (पृ. ४३२)

जिउ बोलावहि तिउ बोलह सुआमी....।। (पृ. ५०८)

जह बैसालहि तह बैसा सुआमी
जह भेजहि तह जावा ।। (पृ. ९९३)

प्रभ डोरी हाथि तुमारे ।। (पृ ६२६)

इस आत्मिक अवस्था में 'हरिजन' का 'आपा मिट जाता' है तथा वह 'नानक–घर' का बेखरीद 'गुलाम' या 'हुकुमी बन्दा' बनकर 'हुकुम का पालन' करता है। उसके अन्दर 'अहम्' लेश मात्र भी नहीं रहता ।

पिछले लेख में वर्णन किया जा चुका है, कि सृष्टि के दो भिन्न–भिन्न मंडल हैं–

१. त्रिगुणी मायिकी मंडल ।

२. अनुभवी आत्मिक मंडल ।

त्रिगुणी मायिकी – मंडल में भिन्न भिन्न 'धर्म' प्रचलित हैं, इन धर्मों के प्रचार के तरीके भी भिन्न भिन्न हैं, जो एक दूसरे के सहायक भी है और विरोधी भी हो सकते हैं।

त्रिगुणी मायिकी मंडल के धर्म प्रचार का प्रभाव श्रोताओं के बुद्धि मंडल के दायरे तक ही सीमित होता है। यह त्रिगुणी मायिकी मंडल के धर्म – प्रचार वाला दिमागी ज्ञान, आत्मिक मंडल के 'अनुभवी धर्म' की सिर्फ 'टोह', 'इशारा', दिमागी – जानकारी ही दे सकता है, परन्तु इलाही 'अनुभवी ज्ञान' के प्रकाश तथा 'जलवे' को बूझने, सीझने, चीन्हने, पहचानने तथा अनुभव करने से असमर्थ है।

यह दिमागी ज्ञान, हमारे मन के 'सबल भ्रम – गढ़' को तोड़ नहीं सकता और अहम् के भ्रम – भुलाव की अज्ञानता के 'अन्धकार' को दूर किये बिना, अंतर आत्मा में इलाही प्रकाश का अनुभव नहीं हो सकता –

कथनी कहि भरमु न जाई।।
सभ कथि कथि रही लुकाई।। (पृ. ६५५)

जन नानक बिनु आपा चीनै मिटै न भ्रम की काई।। (पृ. ६८४)

कहन कहावन कउ कई केतै।।
ऐसो जनु बिरलो है सेवकु जो तत जोग कउ बेतै ।। (पृ. १३०२)

Our intellectual approach to outer dogmatic religion can at best, take us to the outer courtyard of Divine Realm of God, but is unable to introduce and usher our souls into the Inner Mansions of God's Kingdom.

इसका हिन्दी में अनुवाद यूँ किया जा सकता है –

हमारा दिमागी ज्ञान हमें ज्यादा से ज्यादा, आत्मिक मंडल के 'बाहरी आँगन' की 'टोह' या 'जानकारी' दे सकता है, उसके आगे नहीं।

बाहरमूखी मायिकी मंडल के धर्म – प्रचारकों के लिए, धार्मिक ज्ञान की योग्यता तथा डिग्री की आवश्यकता है। इन धार्मिक डिग्रियों को प्राप्त करने के लिए –

१. पढ़ाई करते हुए,

२. खोज करते हुए,

३. प्राप्त किये ज्ञान का प्रचार करते हुए,

४. धार्मिक नियमों के सूक्ष्म नुक्तों की 'बाल की खाल' निकालते हुए,

५. अनगिनत कर्म–कांड की उक्तियां–युक्तियां तथा वाद–विवाद में पड़कर,

हमारी सूक्ष्म मानसिक वृत्तियां, 'बाहरमुख' होकर, 'बिखर' जाती हैं या खो जाती हैं तथा 'बाहरमुखी खिडाव' में, 'व्यस्त' हुए मन की वृत्तियों को एकत्रित करके अन्तरमुखी सिमरन में लगाना, अति कठिन या असम्भव हो जाता है। इसीलिए जिज्ञासु की आम शिकायत होती है कि 'पाठ' या सिमरन में मन नहीं टिकता।

पारे की भान्ति चंचल वृत्तियों को जन्मों से बाहर की ओर 'दौड़ने' तथा 'बिखरने' की 'आदत' पड़ी हुई है और इस दृढ़ किये हुऐ स्वभावे 'विपरीत', इन्हें अन्तरमुखी एकत्रित करके शबद–सुरति में जोड़ना या 'एकाग्र चित्त' होकर सिमरन करना कठिन है।

परन्तु हम बाहरमुखी कर्म–क्रिया के दिमागी ज्ञान की उक्तियां–युक्तियों तथा फिलास्फी के जंगल में, इतने भटक चुके हैं कि सतगुरू के ताकीदी हुकुम, 'नाम सिमरन' से दूर जा रहे हैं या पूर्णतया भूल गये हैं–

नानक कै घरि केवल नामु ।। (पृ. ११३६)

नाम बिना सभि कुड़, गाल्ही होछीआ।। (पृ. ७६१)

भजहु गोबिंद भूलि मत जाहु ।।
मानस जनम का एही लाहु ।। (पृ. ११५९)

साजन संत करहु इहु कामु ।।
आन तिआगि जपहु हरि नामु ।। (पृ. २९०)

पूजसि नाही हरि हरे नानक नाम अमोल ।। (पृ. २६५)

पुंन दान जप तप जेते सभ ऊपरि नामु ।। (पृ. ४०१)

उपरोक्त गुरूवाक अनुसार, आत्मिक मंडल के इलाही अनुभवी ज्ञान के प्रचार के लिए –

१. बुद्धि मंडल के दिमागी ज्ञान से 'ऊपर उठकर',

२. गुरमुख जनों की संगत तथा सेवा करते हुए,

३. वृत्तियों को अंतर – आत्मा में हृदय के 'केन्द्र' में उतार कर,

४. 'शबद – सुरति' में जोड़कर,

५. अटूट 'नाम अभ्यास कमाई',

करने की आवश्यकता है।

इस प्रकार 'नाम सिमरन कमाई' तथा सेवा करते हुए, सतिगुरू की 'नदरि – करम' होती है तथा गुरसिक्ख की अन्तर – आत्मा में ही – 'अनुभव प्रकाश', 'गोबिन्द गजियां', शबद 'वुठा', 'नदरी – नदरि निहाल', अविचल ज्योति का विकास, 'प्रेम छुह', अनहद धुन, गुरप्रसादि, शबद, नाम, प्रीत, प्रेम, रस, चाव आदि सारे इलाही गुण, सहज ही, अचेत ही स्फुटित हो जाते हैं। इस प्रकार वह बख्शा हुआ गुरमुख प्यारा, **'सौभाग्यशाली' तथा लाखों में एक हो जाता है और –**

जनु नानकु धूड़ि मंगै तिसु गुरसिख की
जो आपि जपै अवरह नामु जपावै ॥ (पृ. ३०६)

प्रथमे मनु परबोधै अपना पाछै अवर रीझावै। (पृ. ३८१)

वाली आत्मिक अवस्था का प्रतीक बन जाता है।

वास्तव में –

१. रसना से 'जाप' करने से लेकर,

२. हृदय में धिआना या आराधना,

३. 'शबद – सुरति' द्वारा सिमरन करना,

४. अनहद धुन में मोहित होना,

५. व्यवहारिक जीवन बनाना,

६. शबद की 'कमाई' करना,

७. अंतरगत 'शबद सुरति' में लीन होना,

८. 'नाम – रस' में 'प्रीत – प्रेम' 'रस – चाव' का अनुभव करना और

इसी इलाही विस्मादमयी प्यार तथा प्रिम – रस के आहलाद की 'सहज – समाधि' में, प्रतिक्षण, पल – पल, स्वास – स्वास – जीना, विभोर होना, खो जाना, लोट – पोट होना ही सम्पूर्ण आत्मिक क्रिया है – तथा "आपि जपै" के आदेश का प्रतीक और प्रकटाव है।

गुरबाणी में ऐसी दृढ़ **आत्मिक अवस्था को** ही –

'जीवन रूपु सिमरणु प्रभ तेरा' कहा गया है।

इस प्रकार –

इलाही 'जीवन रौं' (Divine Life Current)

गुर प्रसादि (Divine Grace)

शबद (Wordless WORD)

नाम (NAM)

गुरमुख जनों के अंतर – आत्मा में से –

स्फुटित होकर

उनके तन, मन, बुद्धि के माध्यम से, फूल की सुगन्धि की भांति, स्वाभविक ही – प्रकट होता, प्रकाश देता, बिखेरता, 'गरजता', 'बरसता' अटूट, अमिट, जोरदार, 'लहर' में, एकसार बहता हुआ, 'सृष्टि की समस्त चेतना को' सहज ही 'जीवन – दान' देकर, शरशार (निहाल) कर रहा है।

यही आत्मिक मंडल का सच्चा – पवित्र

इलाही 'धर्म – प्रचार' है,

और **'अवरह नाम जपावै'** का प्रतीक और प्रकटाव है।

(क्रमशः)